गोरा

अध्याय 3

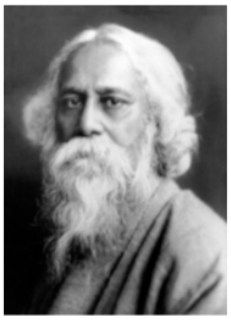

रविंद्रनाथ टैगोर

गोरा

अध्याय 3

https://www.hindiadda.com/gora-part-iii/

पोर्च की छत जो कि ऊपर की मंजिल का बरामदा था, उस पर सफेद कपड़े से ढँकी मेज़ के आस-पास कुर्सियाँ लगी हुई थीं। मुँडरे के बाहर कार्निस पर छोटे-छोटे गमलों में सदाचार और दूसरे किस्म के फूलों के पौधे लगे हुए थे। मुँडेर पर से नीचे सड़क के किनारे के सिरिस और कृष्णचूड़ा के पेड़ों के पत्ते बरसात से धुलकर चिकने दीख रहे थे।

सूर्य अभी अस्त नहीं हुआ था, पश्चिम से ढलती धूप की किरणें छत के एक हिस्से में पड़ रही थीं। वहाँ पर उस समय कोई नहीं था। थोड़ी देर बाद ही सतीश सफेद और काले बालों वाले कुत्ते को लिए हुए आ पहुँचा। कुत्ते का नमा खुद्दे था। जो कुछ कुत्ते को आता था सतीश ने विनय को सब दिखाया- एक पैर उठाकर सलाम करना, फिर सिर ज़मीन पर टेककर प्रणाम करना, बिस्कुट का टुकड़ा देखकर पूँछ पर बैठ, अगले पैर जोड़कर भीख माँगना। इसके लिए खुद्दे को जो कुछ प्रशंसा मिली, सतीश ने उसे चाहे अपनी समझकर गर्व का अनुभव किया- पर स्वयं कुत्ते की ओर से ऐसा यश का कोई उत्साह नहीं था, बल्कि उसकी समझ में तो उस यश की अपेक्षा बिस्कुट का टुकड़ा ही अधिक उपयोगी था!

बीच-बीच में किसी दूसरे कमरे से लड़कियों की खिलखिलाहट और अचम्भे की आवाज़ें और उनके साथ एक मर्दानी आवाज़ भी सुनाई पड़ जाती थी। इस खुले हँसी-मज़ाक के वार्तालाप से विनय के मन में एक अपूर्व मिठास के साथ-साथ जैसे एक ईष्या की टीस-सी पैदा हुई। घर के भीतर लड़कियों की ऐसी आनंद-भरी हँसी, युवा होने के समय से उसने कभी नहीं सुनी। यह आनंद-लहरी उसके इतनी निकट प्रवाहित हो रही है, फिर भी वह उससे इतनी दूर है। सतीश उसके कान के निकट क्या कुछ बोलता ही चला जा रहा था, विनय उसकी ओर ध्याहन नहीं दे सका।

परेशबाबू की स्त्री अपनी तीनों लड़कियों को साथ लेकर आ गईं। उनके साथ एक युवक भी आया, उसका उनसे दूर का रिश्ता है।

परेशबाबू की स्त्री का नाम वरदासुंदरी है। उनकी उम्र कम नहीं है, किंतु समय तक गाँव-देहात की लड़की की तरह रहकर उन्हें सहसा एक दिन आधुनिक युग के साथ-साथ उसकी गति से चलने की धुन चढ़ गई थी। इसीलिए उनकी रेशमी साड़ी कुछ अधिक लहराती थी और उनके ऊँची एड़ी के जूते कुछ ज्यादा ही खट्-खट् करते थे। दुनिया में कौन-सी बातें ब्रह्म हैं और कौन-सी अब्रह्म, इसकी पड़ताल में वे हमेशा बहुत सतर्क रहती हैं। इसीलिए उन्होंने राधारानी का नाम बदलकर सुचरिता रख दिया है। रिश्ते में उनके ससुर लगने वाले एक सज्जन ने बरसों बाद अपनी परदेश की नौकरी से लौटने पर उनके लिए 'लमाईषष्टि' भेजी थी; परेशबाबू उस समय किसी काम से बाहर गए हुए थे; वरदासुंदरी ने उपहार में आई सभी चीजें वापस भेज दी थीं। उनकी राय में ये सब कुसंस्कार और मूर्ति पूजा के अंग थे। लड़कियों के पैरों में मोज़ा पहनने, और ओपी पहनकर बाहर निकलने को भी वह मानो ब्रह्म.... समाज के धर्म सिध्दांत का अंग मानती हों। किसी ब्रह्म-परिवार को ज़मीन पर

आसन बिछाकर भोजन करते देख उन्होने यह आशंका प्रकट की थी कि आजकल ब्रह्म-समाज फिर से मूर्ति-पूजा की ओर फिसलने लगा है।

उनकी बड़ी लड़की का नाम लावण्य है। गोल-मटोल और हँसमुख, उसे लोगों से मिलना-जुलना और गप्पें लड़ाना अच्छा लगता है। गोल चेहरा, बड़ी-बड़ी आँखें, गेहुआँ रंग; पहनावे के मामले में वह स्वभाव से ही लापरवाह है, किंतु इस बारे में उसे माँ के निर्देश के अनुसार चलना होता है। उसे ऊँची एड़ी के जूतों से तकलीफ होती है, लेकिन पहने बिना चारा नहीं हैं। शाम को साजसँवार के समय अपने हाथों से माँ उसके चेहरे पर पाउडर और गालों पर सुर्खी लगा देती है। वह कुछ मोटी है, इसलिए वरदासुंदरी ने उसके कपड़े ऐसे चुस्त सिलवाए हैं कि जब लावण्य सजकर बाहर निकलती है तब जान पड़ता है मानो उसे ठूँस-दबाकर ऊपर से कपड़ा सिल दिया गया हो।

मँझली लड़की का नाम ललिता है। कहा जा सकता है कि वह बड़ी से ठीक उलटी है। लंबाई में बड़ी बहन से ऊँची, दुबली, रंग कुछ अधिक साँवला; बातचीत अधिक नहीं करती और अपने ढंग से रहती है; मन होने पर कटु-कटु बातें भी सुना करती है। वरदासुंदरी मन-ही-मन उससे डरती हैं, सहसा उसे नाराज़ कर देने का साहस नहीं करती।

लीला छोटी है। उसकी उम्र करीबन दस बरस होगी। वह दौड़-धूप और दंगा करने में तेज़ है; सतीश के साथ उसकी धक्का-मुक्की और मार-पीट बराबर चलती रहती है। विशेषतया घर के कुत्ते खुद्दे का मालिक कौन है, इसको लेकर उनका जो प्राचीन झगड़ा चला आता है, उसका अभी तक कोई निर्णय नहीं हो सका। कुत्ते की अपनी राय लेन से शायद वह दोनों में से किसी को भी अपना मालिक न चुनता,किंतु फिर भी इन दोनों में से उसका झुकाव सतीश की ओर ही कुछ अधिक है, क्योंकि लीला के प्यार का दबाव सहना उस बेचारे छोटे-से जीव के लिए सहज नहीं। लीला के प्यार की अपेक्षा सतीश का अत्याचार सहना उसके लिए कम मुश्किल था।

विनय ने वरदासुंदरी के आते ही उठकर शीश झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। परेशबाबू ने कहा, "इन्हीं के घर उस दिन हम.... "

वरदासुंदरी बोलीं, "ओह! बड़ा उपकार किया आपने.... हम आपके बड़े आभारी हैं।'

विनय ऐसा संकुचित हुआ कि ठीक से कुछ उत्तर नहीं दे सका।

जो युवक लड़कियों के साथ आया था उसके साथ भी विनय का परिचय हुआ। उसका नाम सुधीर है; कॉलज में बी.ए. में पढ़ता है। सुंदर चेहरा, गोरा रंग, आँखों पर चश्मा और मूँछों की हल्की-सी रेख। स्वभाव बड़ा चंचल है- ज़रा देर भी चुपचाप बैठा नहीं रह सकता,

कुछ-न-कुछ करेन के लिए उतावला हो उठता है। लड़कियों से हँसी-मज़ाक करके, या उन्हें चिढ़ाकर उनको परेशान किए रहता है। लड़कियाँ भी मानो उसे बराबर डाँटती ही रहती हैं, किंतु साथ ही सुधीर के बिना जैसे उनका समय ही नहीं कटता। सर्कस दिखाने या चिड़ियाघर की सैर कराने को, या शौक की कोई चीज़ खरीदकर लाने को सुधीर हमेशा तैयार होता है। सुधीर का लड़कियों के साथ बेझिझक अपनेपन का बर्ताव विनय को बिल्कुल नया और विस्मयकारी जान पड़ा। उसने मन-ही-मन पहले तो ऐसे बर्ताव की निंदा की, किंतु फिर उस निंदा के साथ थोड़ा-थोड़ा ईष्या का पुट भी मिश्रित होने लगा।

वरदासुंदरी ने कहा, "जान पड़ता है आपको कहीं दो-एक बार देखा है।"

विनय को लगा, जैसे उसका कोई अपराध पकड़ा गया है। अनावश्यक रूप से लज्जित होता हुआ वह बोला, "हाँ, कभी-कभी केशव बाबू के व्याख्यान सुनने चला जाता हूँ।"

वरदासुंदरी ने पूछा, "आप शायद कॉलेज में पढ़ते हैं?"

"नहीं, अब तो नहीं पढ़ता।"

वरदा ने पूछा, "कॉलेज में कहाँ तक पढ़े हैं?"

विनय बोला, " एम.ए. पास किया है।"

यह सुनकर बच्चो-जैसे चेहरे वाले युवक के प्रति वरदासुंदरी को मानो ममता हुई। परेशबाबू की ओर उन्मुख हो लंबी साँस लकर उन्होंने कहा, "हमारा मनू अगर होता तो वह भी अब तक एम.ए. पास कर चुका होता।"

वरदा की प्रथम संतान मनोरंजन की मृत्यु नौ वर्ष की आयु में ही हो गई थी। जब भी वह सुनती हैं कि किसी युवक ने कोई बड़ी परीक्षा पास की है या बड़ा पद पाया है, कोई अच्छी किताब लिखी है या कोई अच्छा काम किया है, तभी उन्हें यह ध्या न आता- मनू बचा रहता तो उसके द्वारा भी ठीक वैसा ही कार्य संपन्न हुआ होता। जो हो, अब जबकि वह नहीं है तो आज के जन-समाज में अपनी तीनों कन्याओं का गुण-गान ही वरदासुंदरी का विशेष कार्य हो गया। उनकी लड़कियाँ पढ़ने में बहुत तेज़ हैं, यह बात वरदा ने विशेष रूप से विनय को बताई। मेम ने उनकी लड़कियों की बुध्दि और गुणों के बारे में कब-कब क्या कहा, यह भी विनय से अनजाना न रहा। लड़कियों को स्कूल में पुरस्कार देने के लिए जब लेफ्टिनेंट-गवर्नर और उनकी मेम आइ थीं, तब उन्हें गुलदस्ते में भेंट करेन के लिए स्कूल की सब लड़कियों में से केवल लावण्य को ही चुना गया था; और गर्वनर की स्त्री ने लावण्य को उत्साह देने के लिए जो मीठा वाक्य कहा था, वह भी विनय ने सुन लिया।

अंत में वरदा ने लावण्य से कहा, "जिस सिलाई के लिए तुम्हें पुरस्कार मिला था, ज़रा वह ले तो आना, बेटी!"

ऊन से कपड़े पर सिलाई की हुई एक तोते की आकृति इस घर के सभी आत्मीय परिजनों में विख्यात हो चुकी थी। यह मेम की सहायता से लावण्य ने बहुत दिन पहले बनाई थी, इसमें लावण्य का अपना करतब बहुत अधिक रहा हो यह बात नहीं थी। किंतु नए परिचित को यह दिखाना ही होगा, यह मानी हुई बात थी शुरु-शुरु में परेशबाबू आपत्ति करते थे, किंतु उसे बिल्कुल बेकार जानकर अब उन्होंने भी आपत्ति करना छोड़ दिया है। ऊन के तोते की रचना की कारीगरी को विनय चकित ऑखो से देख रहा था, तभी बैरे ने आकर एक चिट्ठी परेशबाबू के हाथ में दी।

परेशबाबू चिट्ठी पढ़कर खिल उठे। उन्होंने कहा, "बाबू को यहीं लिवा लाओ!"

वरदा ने पूछा, "कौन हैं?"

परेशबाबू बोले, "मेरे बचपन के दोस्त कृष्णदयाल ने अपने लड़के को हम लोगों से मिलने के लिए भेजा है।"

सहसा विनय का दिल धक्-सा हो गया और उसका चेहरा पीला पड़ गया। क्षण-भर बाद ही फिर वह मुट्ठियाँ भींचकर जमकर बैठ गया, मानो किसी प्रतिद्वंद्वी से अपनी रक्षा करने के लिए तैयार हो गया हो। गोरा इस परिवार के लोगों को निश्चय ही अवज्ञा से देख-समझेगा, यह सोचकर विनय पहले से ही उत्तेजित हो उठा।

तश्तरी में मिठाई-नमकीन और चाय आदि सजाकर नौकर के हाथ दे, सुचरिता ऊपर आकर बैठी थी कि उसी समय बैरे के साथ गोरा ने प्रवेश किया। उसका गोरा-तगड़ा शरीर और चेहरा-मोहरा देखकर सभी चकित हो उठे।

गोरा के माथे पर गंगा की मिट्टी का तिलक था। गाढ़े की धोती के ऊपर उसने तनीदार कुर्ता पहन रखा था, कंधे पर मोटी चादर थी; पैरों में उठी सूँड़ वाले कटकी जूते थे। मानो वर्तमान ढंग के विरुध्द एक मूर्तिमान विद्रोह-सा वह सामने खड़ा था। विनय ने भी उसका ऐसा रूप इससे पहले कभी नहीं देखा था।

गोरा के मन में एक विरोध की आग आज विशेष रूप से धधक रही थी। उसका कारण भी था।

ग्रहण के नहान के लिए कल तड़के ही किसी स्टीमर-कंपनी का जहाज़ यात्री लादकर त्रिवेणी के लिए रवाना हुआ था। रास्ते में जहाँ-तहाँ हुए पड़ाव से अनेक स्त्री-यात्रियों के लिए रवाना हुआ था। रास्ते में जहाँ तहाँ हुए पड़ाव से अनेक स्त्री-यात्रियों के झुंड, अपने साथ दो-दो

एक-एक पुरुष अभिभावक लिए जहाज़ पर सवार हो रहे थे। बाद में कहीं जगह ही न मिले, इसलिए भारी ठेलम-ठेल हो रही थी। जहाज़ पर सवार होने के तख्ते पर कीचड़-सने पैरों से चलती हुई कोई-कोई स्त्री बेपर्दा होती हुई नदी के पानी में गिर पड़ती थी, किसी को खलासी भी धक्का देकर गिरा देते थे। कोई स्वयं सवार हो गई थी, पर साथियों के न चढ़ पाने से घबरा रही थी। बीच-बीच में वर्षा की बौछार आकर उन्हें और भिगो दे रही थी। जहाज़ में उनके बैठने का स्थान पूरा कीचड़ से भर गया था। उनके चेहरे पर और आँखों में एक पीड़ित, त्रस्त, करुण भाव था- मानो निश्चित रूप से यह जानकर कि वे बेबस होकर भी इतनी क्षुद्र हैं कि जहाज़ के मल्लाह से लेकर मालिक तक कोई उनकी विनती पर ज़रा-सी मदद भी नहीं करेगा, उनकी प्रत्येक चेष्टा में एक अत्यंत कातर आशंका का भाव दीख पड़ता था। ऐसी हालत में भरसक गोरा यात्रियों की मदद कर रहा था। ऊपर पहले दर्जे के डेक से एक अंग्रेज़ और एक आधुनिक ढंग के बंगाली बाबू जहाज़ की रेलिंग पकड़े आपस में हँसी-मज़ाक करके मुँह में चुरुट दबाए तमाशा देख रहे थे। बीच-बीच में किसी यात्री की बेहद दुर्गति देख कर अंग्रेज़ हँस उठता था, और बंगाली भी उसमें योग देरहा था।

इसी तरह दो-तीन स्टेशन पार करते हुए गोरा के लिए यह असह्य हो उठा। उसने ऊपर जाकर अपने वज्र कठोर स्वर में गरजकर कहा, "धिक्कार है तुम लोगों को! शरम नहीं आती?"

कड़ी दृष्टि से अंग्रेज़ ने गोरा को सिर से पैर तक देखा। बंगाली ने उत्तर दिया, "शरम? हाँ, देश के इन सब जाहिल जानवरों के कारण शरम ही आती है।"

मुँह लाल करके गोरा बोला, "जाहिलों से बड़े जानवर वह हैं जिनमें हृदय नहीं है।"

बिगड़कर बंगाली ने कहा, "यह तुम्हारी जगह नहीं है- यह फस्ट क्लास है।"

गोरा ने कहा, "ठीक कहा, तुम्हारे साथ मेरी जगह हो ही नहीं सकती- मेरी जगह उन्हीं यात्रियों के बीच हैं लेकिन मैं कहे जाता हूँ- फिर मुझे अपने इस फर्स्ट क्लास में आने को मजबूर न करना! "कहता हुआ गोरा धड़धड़ाता हुआ नीचे उतर गया। उसके जाते ही अंग्रेज़ ने आरामकुर्सी पर दोनों पाँव पसारकर उपन्यास में मुँह गड़ा लिया। उसके सहयात्री बंगाली ने उससे बात करने की दो-एक बार कोशिश की किंतु चली नहीं। देश के साधारण आदमियों में से वह नहीं है, यह साबित करने के लिए उसने खानसामा को बुलाकर पूछा, "क्या खाने के लिए मुर्गी की कोई डिश मिल सकती है?"

खानसामा ने बताया कि केवल रोटी-मक्खन और चाय मिल सकती है।

इस पर बंगाली ने अंग्रेज़ को सुनाकर अंग्रेज़ी भाषा में कहा, "क्रीचर कम्फर्ट्स के मामले में भी जहाज़ की व्यवस्था बिल्कुज़ल रद्दी है।"

अंग्रेज़ ने कोई जवाब नहीं दिया। उसका अख़बार मेज़ पर से उड़कर नीचे गिर गया था; बंगाली बाबू ने कुर्सी से उठकर उन्हें वह उठा दिया, किंतु बदले में 'थैंक्स' तक नहीं पाया। चंद्रनगर पहुँचकर उतरते समय अंग्रेज़ ने सहसा गोरा के पास जाकर टोपी उठाते हुए कहा, "अपने बर्ताव के लिए मैं बहुत शर्मिंदा हूँ- आशा है कि आप मुझे क्षमा कर देंगे।" कहता हुआ वह तेज़ी से आगे बढ़ गया।

लेकिन एक पढ़ा-लिखा बंगाली अपनी साधारण जनता की दुर्गति देखकर विदेशी से मिलकर अपनी श्रेष्ठता का अभिमान करके हँस सकता है, इसका आक्रोश गोरा के भीतर सुलगता रहा। देश की साधारण जनता ने अपने को सब तरह के अपमान और दुर्व्यवहार का ऐसा आदी बना लिया है कि उसके साथ पशुवत व्यवहार करने पर भी वे उसे स्वीकार कर लेते हैं, बल्कि उसे स्वाभाविक और जायज भी मान लेते हैं-इसकी जड़ में जो देशव्यापी घोर अज्ञान है उसका ध्याभन करके गोरा की छाती फटने लगी। किंतु उसे सबसे अधिक यही अखर रहा था कि देश के इस अपमान और दुर्गति को पढ़े-लिखे लोग अपने ऊपर नहीं लेते- निर्दय होकर अपने को अलग करके इसमें अपना गौरव भी मान सकते हैं। इसीलिए आज पढ़े-लिखे लोगों की सारी किताबी पढ़ाई और नकली संस्कार के प्रति पूर्णत: उपेक्षा दिखाने के लिए ही गोरा ने माथे पर गंगा की मिट्टी का तिलक लगाया था और अद्भुत ढंग के नए कटकी जूते खरीदे थे; उन्हें पहनकर गर्व से छाती फुलाकर वह इस ब्रह्म-परिवार में आया था।

मन-ही-मन विनय यह समझ गया कि गोरा का आज का यह रूप जैसे उसकी युध्द-सजा है। न जाने आज गोरा क्या कर बैठे, इसी आशंका से विनय का मन भय, संकोच और विरोध के भाव से भर उठा।

वरदासुंदरी विनय के साथ जब परिचय करा रही थी तब सतीश वहाँ अपने लिए कोई काम न पाकर छत के एक कोने में टीन की एक फिरकी घुमाता हुआ अपना मन बहला रहा था। गोरा को देखकर उसका खेल बंद हो गया। फिर उसने विनय के कान में प्रश्न किया, "यही क्या आपके मित्र हैं?"

विनय ने कहा, "हाँ।"

छत पर आकर गोरा एक क्षण विनय के चेहरे की ओर देखता रहा, फिर ऐसा हो गया मानो कि विनय उसे दीखा ही न हो। परेशबाबू को नमस्कार करके उसने नि:संकोच भाव से एक कुर्सी खींचकर तेज़ी से कुछ पीछे हटाई और उस पर बैठ गया। वहाँ कहीं कुछ स्त्रियाँ भी हैं, यह लक्ष्य करना उसने मानो अशिष्टता समझा।

इस असभ्य के पास से लड़कियों को लेकर चली जाएँ- वरदासुंदरी यह विचार कर रही थीं कि परेशबाबू ने उनसे कहा, "इनका नाम गौरमोहन हैं, मेरे मित्र कृष्णदयाल के लड़के हैं।"

तब गोरा ने उनकी ओर मुड़कर नमस्कार किया। विनय से वार्तालाप में सुचरिता गोरा की बात पहले ही सुन चुकी थी, किंतु यह समझने में उसे देर लगी कि यह महाशय ही विनय के मित्र हैं। पहली दृष्टि से ही गोरा के प्रति उसमें एक खीझ उपजी। किसी अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे व्यक्ति में कट्टर हिंदूपन देखकर सह सके, ऐसे संस्कार सुचरिता के नहीं थे, न इतनी सहिष्णुता ही थी।

गोरा से परेशबाबू ने अपने बाल-बंधु कृष्णदयाल के हाल-चाल पूछे। फिर अपने छात्र जीवन की बात करते हुए बोले, "उन दिनों कॉलेज में हमारी अलग जोड़ी थी; दोनों काले पहाड़ की तरह थे- कुछ मानते ही नहीं थे.... होटल में खाना ही अच्छा समझते थे। कितनी बार दोनों संध्यां के समय गोलदिग्घी पर बैठकर मुसलमान की दुकान का कबाब खाकर आधी-आधी रात तक बैठे इस पर चर्चा किया करते थे कि कैसे हम लोग हिंदू-समाज का सुधार करेंगे।"

वरदासुंदरी ने पूछा, "आजकल वह क्या करते हैं?"

गोरा बोला, "अब वह हिंदू-आचार का पालन करते हैं।"

वरदा बोलीं, "लाज नहीं आतीं?" मानो क्रोध से उनका सर्वांग जल उठा था।

कुछ हँसकर गोरा ने कहा, "लाज कमज़ोर चरित्र का लक्षण है। कोई-कोई तो बाप का परिचय देने में भी लजाते हैं।"

वरदा, "पहले वह ब्रह्म नहीं थे?"

गोरा, "मैं भी तो एक समय ब्रह्म था।"

वरदा, "और अब आप साकार उपासना में विश्वास करते हैं?"

गोरा, "आकार नाम की चीज़ की बिना वजह अवज्ञा करूँ, ऐसा कुसंस्कार मेरा नहीं है। आकार को गाली देने से ही क्या वह मिट जाएगा? आकार का रहस्य कौन जान सका है?"

मृदु स्वर में परेशबाबू ने कहा, "लेकिन आकार सीमा-विशिष्ट जो है।"

गोरा ने कहा, "सीमा के न होने से तो कुछ प्रकट ही नहीं हो सकता। असीम अपने को प्रकट करने के लिए ही सीमा का आश्रय लेता है, नहीं तो वह प्रकट कहाँ है, और जो प्रकट नहीं है

वह संपूर्ण नहीं है। वाक्य में जैसे भाव निहित हैं, वैसे ही आकार में निराकार परिपूर्ण होता है।"

गोरा, "मैं यदि न भी कहूँ तो उससे कुछ आता-जाता नहीं है; संसार में आकार मेरे कहने-न कहने पर निर्भर नहीं करता। निराकार ही यदि यथार्थ परिपूर्णता होती तो आकार को तो स्थान न मिलता।"

सुचरिता की यह अत्यंत दिली इच्छा होने लगी कि कोई उस घमंडी युवक को बहस में बिल्कुल हराकर इसे नीचा दिखा दे। विनय चुपचाप बैठा हुआ गोरा की बात सुन रहा है, यह देख मन-ही-मन उसे क्रोध आया। गोरा इतने ज़ोर से अपनी बात कह रहा था कि उस ज़ोर को नीचा दिखाने के लिए सुचरिता के मन में भी उबाल आ गया।

इसी समय बैरा चाय के लिए केतली में गरम पानी लाया। सुचरिता उठकर चाय बनाने लग गई। बीच-बीच में विनय चकित-सा सुचरिता के चेहरे की ओर देख लेता। उपासना के संबंध में यद्यपि विनय का मन गोरा से विशेष भिन्न नहीं था, किंतु उसे इस बात से दु:ख हो रहा था कि गोरा बिना बुलाए इस ब्रह्म-परिवार में आकर, ऐसी ढीठता से उनके विरुध्द मत का प्रतिपादन कर रहा है। इस प्रकार लड़ने को तैयार गोरा के आचरण के साथ वृध्द परेशबाबू के आत्म-स्थिति प्रशांत भाव, सभी तरह के तर्क-वितर्क से परे एक गहरी प्रसन्नता की तुलना करके विनय का हृदय उनके प्रति श्रध्दा से भर उठा। मन-ही-मन वह कहने लगा-मतामत कुछ नहीं होते, अंत:करण की पूर्णता, दृढ़ता और आत्म-प्रसाद, यही सबसे दुर्लभ वस्तुएँ हैं। अंत में कौन सच है, कौन झूठ, इसे लेकर चाहे जितना तर्क कर लें, उपलब्धि रूप जो सच है वही वास्तव में सच है। सारी बातचीत के बीच परेशबाबू कभी-कभी ऑखें बंद करके अपने आत्म के भीतर कहीं डूब जाते थे- यही उनका अभ्यास था- उस समय की उनकी अंतर्निविष्ट, शांत मुखाकृति को विनय एकटक देख रहा था। गोरा इस वृध्द के प्रति भक्ति का अनुभव करके भी अपनी बातों को संयत नहीं कर पा रहा है, इससे विनय को बड़ी पीड़ा हो रही थी।

कई प्याले चाय बनाकर सुचरिता ने परेशबाबू के चेहरे की ओर देखा। चाय के लिए किससे वह अनुरोध करे और किससे नहीं, इस बारे में उसे दुविधा हो रही थी। गोरा की ओर देखते हुए वरदासुंदरी ने पूछ ही तो लिया, "शायद आप तो यह सब कुछ लेंगे नहीं।"

गोरा ने कहा, "नहीं।"

वरदा, "क्यों? जात चली जाएगी क्या?"

गोरा ने कहा, "हाँ।"

वरदा, "आप जात मानते हैं?"

गोरा, "जात क्या मेरी अपनी बनाई चीज़ है जो न मानूँगा? जब समाज को मानता हूँ तब जात को भी मानता हूँ।"

वरदा, "क्या हर बात में समाज को मानना ही होगा?"

गोरा, "न मानने से समाज टूट जाएगा।"

वरदा, "टूट ही जाएगा तो क्या बुराई है?"

गोरा, "जिस डाल पर सब एक साथ बैठे हों क्या उसे काट देने में बुराई नहीं है?"

मन-ही-मन सुचरिता ने बहुत विरक्त होकर कहा, "माँ, फिजूल बहस करने से क्या फायदा- वह हमारा छुआ हुआ नहीं खाएँगे।"

पहली बार गोरा ने सुचरिता की ओर स्थिर दृष्टि से देखा। सुचरिता विनय की ओर देखकर थोड़े संशय के स्वर में बोली, "आप क्या.... ?"

विनय कभी चाय नहीं पीता। मुसलमान की बनाई हुई डबल रोटी-बिस्कुट खाना भी उसने बहुत दिन पहले छोड़ दिया है। किंतु आज उसके न खाने से नहीं चलेगा। सिर उठाकर उसने ज़ोर से कहा, "हाँ, अवश्य लूँगा।" कहकर उसने गोरा की ओर देखा। गोरा के ओठों पर कठोर हँसी की हल्की-सी रेखा दीख पड़ी। चाय विनय को कड़वी लगी, किंतु उसने पीना नहीं छोड़ा।

मन-ही-मन वरदासुंदरी ने कहा- आह, यह विनय कितना भला लड़का है! फिर गोरा की ओर से उन्होंने बिल्कुल ही मुँह फेरकर विनय की ओर ध्यालन दिया। यह देखकर परेशबाबू ने धीरे-से अपनी कुर्सी गोरा की ओर सरकाते हुए मृदु स्वर में उससे बात शुरू किया।

सड़क पर मूँगफली वाले ने 'ताज़ी भुनी मूँगफली' की हाँक लगाई। सुनते ही लीला ने ताली बजाकर कहा,"सुधीर दा, मूँगफली वाले को बुलाओ!"

उसके कहते ही सतीश छत से झुककर मूँगफली वाले को बुलाने लगा।

इसी समय एक सज्जन और आ उपस्थिति हुए। सभी ने उन्हें 'पानू बाबू' कहकर संबोधित किया। किंतु उनका असली नाम था हरानचंद्र नाग। उस टोली में विदवता और बुध्दि के कारण उनकी विशेष ख्याति है। यद्यपि किसी ओर से भी कोई बात साफ-साफ नहीं कही गई, तथापि यह संभावना मानो वायुमंडल में बराबर तैरती रहती है कि इन्हीं के साथ

सुचरिता का विवाह होगा। पानू बाबू का मन भी सुचरिता की ओर लगा है, इसके बारे में किसी को कोई संदेह नहीं था। और इसी बात की आड़ लेकर लड़कियाँ सदा सुचरिता से मज़ाक करती रहती थीं।

पानू बाबू स्कूल में मास्टरी करते हैं। वरदासुंदरी उन्हें निरा स्कूलमास्टर समझ उनका विशेष सम्मान नहीं करतीं। वह कुछ ऐसा भाव दर्शाती हैं कि पानू बाबू को अगर उनकी किसी कन्या के प्रति अनुराग प्रकट करने का साहस नहीं हुआ, तो वह उचित ही हुआ है। उनके भावी दामाद डिप्टीगिरी के पद की कठिन शर्त से बँधे हुए हैं....

हरानबाबू की ओर सुचरिता के एक प्याला चाय सरकाते ही लावण्य दूर से ही उसकी ओर देखकर दबे ओठों से मुस्कराने लगी। वह सूक्ष्म हँसी भी विनय की नज़र से बची न रही। इतने थोड़े समय में ही दो-एक मामलों में विनय की नज़र बड़ी तेज़ और सतर्क हो उठी थी- नहीं तो इससे पहले वह नज़र के पैनेपन के लिए ऐसा प्रसिध्द नहीं था।

हरान और सुधीर काफी दिनों से एक परिवार की लड़कियों से परिचित हैं, और इस परिवार के इतिहास के साथ इतने घुले हुए हैं कि लड़कियों के आपस के इशारों का विषय बन गए हैं। विनय को यह बात विधाता के अन्याय सी लगी तथा उसके मन में चुभन-सी होने लगी। उधर हरान के आ जाने से सुचरिता के मन में थोड़ी-सी आशा का संचार हुआ। गोरा की हेकड़ी को जैसे भी हो नीचा दिखाया जाय तभी उसका जी ठंडा होगा। दूसरे मौकों पर हरान की बहसबाज़ी से वह प्राय: खीझ उठती, किंतु आज इस तर्क-वीर को देखकर उसने आनंदपूर्वक उसके सम्मुख चाय और डबलरोटी की प्लेट हाज़िर कर दी।

परेशबाबू ने कहा, "पानू बाबू, ये हैं हमारे.... "

हरान ने कहा, "इन्हें मैं अच्छी तरह जानता हूँ। एक समय यह हमारे ब्रह्म-समाज के बड़े उत्साही सदस्य थे।"

यह कहकर गोरा से किसी तरह की और बातचीत की कोशिश न करके हरान चाय के प्याले की ओर ही सारा ध्या न देने लगे।

उन दिनों तक दो-एक बंगाली ही सिविल सर्विस की परीक्षा पास करके स्वदेश लौटे थे। उन्हीं में से एक के स्वागत की बात सुधीर सुना रहा था। हरान ने कहा, "बंगाली चाहे जितनी परीक्षाएँ पास कर लें, लेकिन किसी बंगाली के द्वारा काम कुछ नहीं हो सकता।"

कोई बंगाली मजिस्ट्रेट या जज ज़िले का भार नहीं सँभाल सकेगा, यही प्रमाणिक करने के लिए हरानबाबू बंगाली चरित्र के अनेक दोषों और दुर्बलताओं की व्याख्या करने लगे। गोरा

का मुँह देखते-देखते लाल हो उठा। उसने अपनी शेर की-सी दहाड़ को भरकर दबाते हुए कहा, "आपकी राय अगर सचमुच यही है, तो आराम से यहाँ पर बैठे हुए डबलरोटी किस मुँह से चबा रहे हैं?"

विस्मय से हरान ने भवें उठाते हुए कहा, "फिर आप क्या करने को कहते हैं?"

गोरा, "या तो बंगाली चरित्र के कलंक को मिटाइए, या गले में फाँसी लगाकर मरिए। हमारी जाति के द्वारा कभी कुछ नहीं हो सकेगा, यह कटु बात क्या ऐसी आसानी से कह देने की है? आपके गले में रोटी अटक नहीं जाती?"

हरान, "सच्ची बात कहने में क्या बुराई है?"

गोरा, "आप बुरा न मानें, किंतु यह बात अगर आप यथार्थ में सच समझते, तो ऐसे आराम से यों बढ़ा-चढ़ाकर नहीं कह सकते थे। आप जानते हैं कि बात झूठ है, तभी यह बात आपके मुँह से निकल सकी। हरानबाबू, झूठ बोलना पाप है, झूठी निंदा तो और भी बड़ा पाप है, और अपनी जाति की झूठी निंदा से बड़ा पाप शायद ही कोई हो!"

हरान गुस्से से बेचैन हो उठे। गोरा ने कहा, "आप अकेले ही क्या अपनी सारी जाति से बड़े हैं? आप गुस्सा करेंगे, और अपने पुरखों की ओर से हम लोग चुपचाप सब सहते जाएँगे?"

अब तो हरान के लिए पराजय मानना और भी कठिन हो गया। उन्होंने और भी ऊँचे स्वर में बंगालियों की निंदा करना शुरू किया। बंगाली समाज की अनेक प्रथाओं का उदाहरण देकर वे बोले, "ये सब रहते हुए बंगाली से कोई उम्मीद नहीं की जा सकती।"

गोरा ने कहा, "जिन्हें आप कुप्रथा कहते हैं केवल अंगेज़ी किताबें रटकर कहते हैं; स्वयं उनके बारे में कुछ नहीं जानते। जब अंग्रेज़ की सब कुप्रथाओं की भी आप ठीक ऐसे ही निंदा कर सकेंगे तब इस बारे में और कुछ कहिएगा।"

इस प्रसंग को परेशबाबू ने बंद करने की चेष्टा की, किंतु क्रुध्द हरान ने बहस को किसी तरह नहीं छोड़ा। सूर्य अस्त हो गया; बादलों के भीतर से आने वाले एक अपूर्व लाल प्रकाश से सारा आकाश लालिमामय हो उठा। विनय के मन के भीतर एक स्वर तर्क के कोलाहल को डुबाता हुआ गूँज उठा। परेशबाबू अपनी सायंकालीन उपासना में चित्त लगाने के लिए छत से उठकर बगीचे में चंपा के पेड़ के नीचे बने हुए चबूतरे पर जा बैठे।

वरदासुंदरी का चित्त जैसे गोरा से विमुख था, वैसे ही हरान भी उनके विशेष प्रिय नहीं थे। इन दोनों की बहस जब उनके लिए बिल्कुदल आसह्य हो गई तब उन्होंने विनय बाबू को संबोधित कर कहा, "चलिए विनय बाबू, हम लोग कमरे में चलें!"

वरदासुंदरी का यह स्नेहपूर्ण पक्षपात स्वीकार करके विनय को बेबस होकर छत से कमरे में जाना पड़ा। लड़कियों को भी वरदा ने बुला लिया। सतीश बहस की गति देखकर पहले ही मूँगफली का अपना हिस्सा लेकर और कुत्ते खुद्दे को साथ लिए वहाँ से जा चुका था।

वरदासुंदरी विनय के सामने अपनी लड़कियों के गुण सुनाने लगीं। लावण्य से बोली, "अपनी वह कापी लाकर विनय बाबू को दिखाना.... "

नए परिचितों को अपनी कापी दिखाने का लावण्य को अभ्यास हो गया है। यहाँ तक कि मन-ही-मन वह इसकी राह देखती रहती है। आज बहस उठ खड़ी होने के कारण वह कुंठित-सी हो गई थी।

विनय ने कापी खोलकर देखी, उसमें अंग्रेज़ी कवि मूर और लांगफेलों की कविताएँ लिखी हुई थीं। हाथ की लिखावट परिश्रम और सुघड़ता का परिचय दे रही थी। कविताओं के शीर्षक और प्रथमाक्षर रोमन शैली में लिखे गए थे।

विनय के मन में कापी देखकर वास्तविक विस्मय हुआ। उन दिनों मूर की कविता कापी में नकल कर सकना लड़कियों के लिए कम बहादुरी की बात नहीं थी। विनय का मन काफी प्रभावित हो गया है, यह देखकर वरदासुंदरी ने उत्साह से मँझली लड़की संबोधित करके कहा, "ललिता, तू बड़ी लक्ष्मी-बेटी है, ज़रा अपनी वह कविता.... "

रुखाई से ललिता ने कहा, "नहीं माँ, मुझसे नहीं बनेगा। वह मुझे अच्छी तरह याद नहीं।" यह कहकर वह दूर खिड़की के पास खड़ी होकर बाहर सड़क की ओर देखने लगी।

वरदासुंदरी ने विनय को समझाया, "इसे याद सब-कुछ है, किंतु बड़ी घुन्नी है- अपनी विद्या को प्रकट नहीं करना चाहती।" उन्होंने ललिता की आश्चर्यजनक विद्या-बुध्दि का परिचय देने के लिए दो-एक घटनाओं का हवाला देकर कहा, "ललिता बचपन से ही ऐसी है, रुलाई आने पर उसकी ऑखों में ऑसू भी आते थे।" इस मामले में उसके स्वभाव की पिता से तुलना भी उन्हांने की थी।

अब लीला की बारी आई। उसे कहते ही वह पहले तो खिलखिलाकर हँसती रही; फिर धड़ाधड़ एक ही साँस में चाबी की गुड़िया की तरह बिना अर्थ समझे हुए 'ट्विंकल ट्विंकल लिट्ल स्टार' कविता सुना गई।

अब संगीत-विद्या का परिचय देने का समय आ पहुँचा है, यह समझकर ललिता कमरे से बाहर चली गई।

तब तक बाहर आकर छत पर बहस तेजाबी हो उठी थी। गुस्से में आकर हरान तर्क छोड़कर गालियों पर उतर आने को हो रहे थे। हरान की अशिषटता से लज्जित और विरक्त होकर सुचरिता गोरा का पक्ष लेने लगी थी, यह बात भी हरान के लिए सांत्वीना देने वाली नहीं थी।

आकाश में कालिमा और सावन के मेघ घने हो गए। सड़क पर बेला के फूलों की हाँक लगाते हुए फेरी वाले निकल गए। सामने सड़क के कृष्णचूड़ा पेड़ के पत्ते में जुगनू चमकने लगे। साथ के घर की पोखर के पानी पर एक घनी काली परत छा गई।

परेशबाबू उपासना पूरी करके फिर छत पर आ गए। उन्हें देखते ही गोरा और हरान दोनों ही झेंपकर चुप हो गए। खड़े होकर गोरा ने कहा, "रात हो गई, अब चलूँ!"

विदा लेकर विनय भी कमरे से बाहर छत पर आ गया। परेशबाबू ने गोरा से कहा, "तुम्हारी जब मर्जी हो यहाँ आना! कृष्णदयाल मेरे भाई के बराबर हैं। अब उनसे मेरा मत नहीं मिलता, मुलाकात भी नहीं होती, चिट्ठी-पत्री बंद है; लेकिन बचपन की दोस्ती नस-नस में बस जाती है कृष्णदयाल के नाते तुमसे भी मेरा बड़ा निकट संबंध है। ईश्वर तुम्हारा मंगल करें!"

परेशबाबू के शांत मधुर स्वर से गोरा की इतनी देर तक बहस की गर्मी मानो सहसा ठंडी पड़ गई। गोरा ने आते समय परेशबाबू के प्रति कोई विशेष आदर प्रकट नहीं किया था। किंतु जाते समय सच्ची श्रध्दा से प्रणाम करता गया। सुचरिता से किसी तरह का विदा-सम्भाषण उसने नहीं किया। सुचरिता उसके सम्मुख है, अपनी किसी चेष्टा से इसको स्वीकार करना ही उसने अशिष्टता समझा। विनय ने परेशबाबू को झुककर प्रणाम किया और सुचरिता की ओर मुड़कर उसे नमस्कार किया। फिर लज्जित-सा शीघ्रता से गोरा के पीछे-पीछे नीचे उतर गया।

हरानबाबू विदा लेने से बचने के लिए कमरे में जाकर मेज़ पर रखी हुई 'ब्रह्म-संगीत' पुस्तक उठाकर उसके पन्ने उलटते रहे।

विनय और गोरा के जाते ही हरान जल्दी से छत पर आकर परेशबाबू से बोले, "देखिए, हर किसी के साथ लड़कियों का परिचय करा देना सम्माननीय नहीं समझता।"

भीतर-ही-भीतर सुचरिता कुढ़ती रही थी; अब धीरज न रख सकी। बोली, "यदि पिताजी यह नियम मानते तब तो आपसे हम लोगों का परिचय न हो पाया होता।"

हरान बोले, "मेल-जोल अपने समाज तक सीमित रखना ही अच्छा होता है।"

हँसकर परेशबाबू बोले, "पारिवारिक अंत:पुर को थोड़ा और विस्तार देकर आप एक सामाजिक अंत:पुर बनाना चाहते हैं। लेकिन मैं समझता हूँ, लड़कियों का अलग-अलग मत के लोगों से मिलना ठीक ही है, नहीं तो यह उनकी बुध्दि को जान-बूझकर कमज़ोर करना होगा। इसमें भय या लज्जा का तो कोई कारण नहीं दीखता।"

हरान, "मैं यह नहीं कहता कि भिन्न मत के लोगों से लड़कियों को नहीं मिलना चाहिए। किंतु लड़कियों से कैसे व्यवहार करना चाहिए, इसकी तमीज़ तक उन्हें नहीं है।"

परेशबाबू, "नहीं-नहीं, यह आप क्या कहते हैं? जिसे आप तमीज़ की कमी कहते हैं वह केवल एक संकोच है.... लड़कियों से मिले-जुले बिना वह दूर नहीं होता।"

उध्दत भाव से सुचरिता ने कहा, "देखिए, पानू बाबू, आज की बहस में तो मैं अपने समाज के ही आदमी के व्यवहार से लज्जित हो रही थी।"

इसी बीच दौड़ते हुए आकर लीला ने "दीदी, दीदी!" कहते हुए सुचरिता का हाथ पकड़ा और उसे भीतर खींचती हुई ले गई।

उस दिन बहस में गोरा को नीचा दिखाकर सुचरिता के सामने अपनी विजय-पताका फहराने की हारन की तीव्र इच्छा थी। सुचरिता भी आरंभ में यही आशा कर रही थी। किंतु संयोग से हुआ इससे ठीक उलटा ही। धार्मिक-विश्वास और सामाजिक सिध्दातों में सुचरिता की सोच गोरा से नहीं मिलती थी। किंतु अपने देश के प्रति ममता, अपनी जाति के लिए पीड़ा उसके लिए स्वाभाविक थी। वह देश के मामलों की चर्चा प्राय: करती रही हो, ऐसा नहीं था; किंतु उस दिन जाति की निंदा सुनकर अचानक जब गोरा गरज उठा, तब सुचरिता के मन में उसके अनुकूल ही प्रतिध्व नि गूँज गई। इतनी पीड़ा के साथ, इतने दृढ़ विश्वास के साथ कभी किसी ने उसके सामने देश की बात नहीं की थी। साधारणतया हमारे देश के लोग अपने देश और जाति की चर्चा में कुछ दिखावे का-सा भाव दिखाते रहते हैं; मानो वास्तव में वे उन पर विश्वास न रखते हों। इसीलिए कविता करते समय देश के बारे में वे जो चाहे कह दें, देश पर उनकी आस्था नहीं होती। किंतु गोरा अपने देश के सारे दु:ख, दुर्गति, दुर्बलता के पार एक महान सच्चारई को साक्षात देख सकता था, इसलिए देश के दारिद्रय को अस्वीकार किए बिना भी उसमें देश के प्रति ऐसी गहरी श्रध्दा थी। देश की आंतरिक शक्ति के प्रति उसमें ऐसा अडिग विश्वास था कि उसके निकट आने पर संशय करने वाले भी उसकी दुविधा-विहीन देशभक्ति की ललकार सुनकर हार जाते थे। गोरा की इसी अविचल भक्ति के सामने हरान के अज्ञानपूर्ण तर्क सुचरिता को निरंतर अपमान-शूल से चुभ रहे थे। बीच-बीच में वह झिझक छोड़कर ऊबे भाव से हरान की दलीलों का प्रतिवादन किए बिना न रह सकी थी।

फिर गोरा और विनय की पीठ के पीछे हरान ने जब ईष्यावश भद्दे ढंग से उनकी बुराई करनी शुरू की तब इस ओछेपन के विरुध्द भी सुचरिता को गोरा का ही पक्ष लेना पड़ा।

तब भी ऐसा नहीं था कि गोरा के विरुध्द सुचरिता के मन का विद्रोह एकदम शांत हो गया हो। गोरा का सिर पर चढ़ने वाला उध्दत हिंदूपन अब भी उसके मन पर आघात कर रहा था। वह ऐसा समझ रही थी कि इस हिंदूपन के भीतर कहीं प्रतिकूलता का भाव ज़रूर है- वह सहज शांत भाव नहीं हैं, अपनी आस्था में परिपूर्ण नहीं हैं बल्कि सर्वदा दूसरे को चोट पहुँचाने के लिए कमर कसे हुए हैं।

उस दिन शाम को हर बात में, हर काम में, यहाँ तक कि भोजन करते समय और लीला को कहानियाँ सुनाते समय भी सुचरिता के मन में कहीं गहरे में एक पीड़ा कसकती रही, जिसे वह किसी तरह भी दूर नहीं कर सकी। काँटा कहाँ चुभा है, यह ठीक-ठीक जानकर ही उसे निकाला जा सकता है। मन के काँटे को ढूँढ निकालने के लिए ही उस रात सुचरिता देर तक छत के बरामदे में अकेली बैठी रही।

रात के अंधकार में उसने अपने मन की अकारण जलन को जैसे पोंछकर दूर कर देने की कोशिश की, किंतु कुछ लाभ नहीं हुआ। हृदय का बोझ हल्का करने के लिए उसने रोना चाहा, पर रो भी न सकी।

एक अजनबी युवक माथेपर तिलक लगाकर गया, अथवा उसे बहस में हराकर उसका अहंकार नहीं तोड़ा जा सका, इसी बात को लेकर सुचरिता इतनी देर से पीड़ा पा रही है, इससे अधिक बेतुकी और हास्यास्जनक बात और क्या हो सकती है! इन कारणों को बिल्कुनल असंभव मानकर उसने मन से निकाल दिया। तब असल तथ्य उसके सामने आया, और उसका स्मरण आते ही सुचरिता को बड़ी लज्जा का बोध हुआ। आज तीन-चार घंटे तक सुचरिता उस युवक के सामने बैठी रही थी और बीच-बीच में उसका पक्ष लेकर बहस में योग देती रही थी, फिर भी मानो उसने उसे बिल्कुल लक्ष्य ही नहीं किया; जाते समय भी जैसे उसकी ऑखों ने सुचरिता को देखा ही न हो। यह संपूर्ण उपेक्षा की सुचरिता को बहुत गहरे में चुभ गई है, इसमें कोई संदेह न रहा। दूसरे घर की लड़कियों से मेल-जोल का अभ्यास न होने से जो एक संकोच होता है- विनय के व्यवहार में जैसे संकोच का परिचय मिलता है- उस संकोच में भी एक शरमीली नम्रता होती है। गोरा के व्यवहार में उसका लेश भी नहीं था। उसकी इस कठोर और प्रबल उदासीनता को सह लेना या अवज्ञा करके उड़ा देना सुचरिता के लिए आज क्यों असंभव हो उठा है? इतनी बड़ी उपेक्षा अबोध पर वह मानो मरी जा रही थी। हरान की थोथी दलीलों से जब एक बार सुचरिता बहुत अधिक उत्तेजित हो उठी थी तब गोरा ने एक बार उकी ओर देखा था। उस चिवन में संकोच का लेश-मात्र भी नहीं था- किंतु उसमें क्या था यह भी समझना कठिन था। उस समय क्या मन-ही-मन वह कह रहा था- यह लड़की कितनी निर्लज्ज है? अथवा-इसकी हिम्मत तो देखो.... बिना बुलाए पुरुषों की

बातचीत में टाँग अड़ाने आ गई है? लेकिन उसने अगर ठीक ऐसा ही सोचा हो, तो उससे क्या आता-जाता है? उससे कुछ भी आता-जाता नहीं फिर भी सुचरिता को यह सोचकर-सोचकर बड़ी तकलीफ होने लगी। उसने सारे प्रसंग को भूल जाने जाने की, मन से मिटा देने की चेष्टा की; पर सब व्यर्थ। तब उसे गोरा पर गुस्सा आने लगा। मन के पूरे बल से उसने चाहा कि गोरा को एक बदतमीज़ और उध्दत युवक कहकर उसकी अवज्ञा कर दे, किंतु उस विशाल शरीर, वज्र-स्वर पुरुष की उस नि:संकोच चितवन की स्मृति के सामने सुचरिता मानो अपने को बहुत तुच्छ अनुभव करने लगी- किसी तरह भी वह अपने गौरव को अपने सम्मुख स्थापित न कर सकी।

सुचरिता को विशेष कारणों से सबकी ऑंखों में रहने का, दुलार पाने का अभ्यास हो गया था। मन-ही-मन वह यह सब चाहती रही हो, ऐसा नहीं था; फिर आज की गोरा की उपेक्षा क्यों उसे इतनी असह्य जान पड़ी? बहुत सोचकर सुचरिता अंतत: इस परिणाम पर पहुँची कि उसने गोरा को खासतौर से नीचा दिखाने की इच्छा की थी, इसीलिए गोरा की अविचल लापरवाही से उसे इतनी चोट पहुँची।

इस तरह उधेड़-बुन करते-करते रात काफी बीत गई। बत्ती बुझाकर सब लोग सोने चले गए। डयोढ़ी का दरवाज़ा बंद होने का शब्द सूचना दे गया कि बैरा भी चौका-बासन समाप्त करके सोने जाने की तैयारी कर रहा है। तभी रात के कपड़े पहने हुए ललिता छत पर आई और सुचरिता से कुछ कहे बिना उसके पास से होती हुई छत के एक कोने की मुँडेर के सहारे खड़ी हो गई। मन-ही-मन सुचरिता हँसी; समझ गई कि ललिता उस पर नाराज़ है। आज उसकी ललिता के पास सोने की बात तय थी, इसे वह बिल्कुल भूल गई थी। किंतु 'भूल गई थी' कहने से तो ललिता से अपराध क्षमा नहीं कराया जा सकता- वह कैसे भूल गई, यही तो सबसे बड़ा अपराध है! समय रहते वायदे की याद दिला देने वाली लड़की वह नहीं है। बल्कि वह मन मारकर सोने भी चली गई थी- ज्यों-ज्यों देर होती गई त्यों-त्यों उसका आहत अभिमान और तीखा होता गया था। अंत में जब और सहना बिल्कुतल असंभव हो गया तब वह बिस्तर से उठकर बिना कुछ कहे यह जताने चली आई थी कि मैं अभी तक जाग रही हूँ।

कुर्सी छोड़कर सुचरिता ने धीरे-धीरे ललिता के पास आकर उसे गले लगाया और कहा, "ललिता, मेरी अच्छी बहन, नाराज़ मत हो!"

ललिता ने सुचरिता की बाँह हटाते हुए कहा, "नहीं, मैं क्यों नाराज़ होने लगी? तुम जाओ, बैठो!"

सुचरिता ने उसे फिर हाथ पकड़कर खींचते हुए कहा, "चलो भई, सोने चलें!"

ललिता ने कोई जवाब नहीं दिया, चुपचाप खड़ी रही। अंत में सुचरिता उसे खींचती हुई सोने के कमरे में ले गई।

रुँधे गले से ललिता ने कहा, "तुमने इतनी देर क्यों की? पता है, ग्यारह बज गए हैं? मैं बराबर घंटे गिनती रही हूँ। और अब तुम शीघ्र ही सो जाओगी।"

ललिता को छाती की ओर खींचते हुए सुचरिता ने कहा, "आज मुझसे गलती हो गई, बहन!"

यों अपराध स्वीकार कर लेने पर ललिता का क्रोध दूर हो गया। बिल्कुनल शांत होकर बोली, "इतनी देर अकेली बैठी किसकी बात सोच रही थीं, दीदी? पानू बाबू की?"

तर्जनी से उसे मारते हुए सुचरिता ने कहा, "दु!"

ललिता को पानू बाबू ज़रा भी अच्छे नहीं लगते। यहाँ तक कि और बहनों की तरह उनकी बात को लेकर सुचरिता को चिढ़ाना भी उसे अच्छा नहीं लगता। पानू बाबू की इच्छा सुचरिता से विवाह करने की है, यह बात सोचकर ही उसे गुस्सा आ जाता है।

थोड़ी देर चुप रहकर ललिता ने बात उठाई, "अच्छा दीदी, विनय बाबू तो अच्छे आदमी हैं- हैं न?"

इस प्रश्न में सुचरिता की राय जानने का ही उद्देश्य था; यह नहीं कहा जा सकता।

सुचरिता ने कहा, "हाँ, विनय बाबू तो अच्छे आदमी हैं ही- बहुत ही सज्जन हैं।"

ठीक जिस ध्वरनि की उम्मीद लालिता ने की थी उसकी गूँज उसे इस उत्तर में नहीं जान पड़ी। तब उसने फिर कहा, "लेकिन जो भी कहो दीदी, गौरमोहन बाबू मुझे बिल्कुाल अच्छे नहीं लगे। कैसा भूरा-चिट्टा रंग है, खुरदरा चेहरा है, दुनिया में और किसी को कुछ समझते ही नहीं। तुम्हें कैसे लगे?"

सुचरिता बोली, "कट्टर हिंदूपन है।"<> ललिता ने कहा, "नहीं-नहीं, हमारे मँझले काका में भी तो कड़ा हिंदूपन है, किंतु वह तो और ढंग का है। लेकिन यह तो न जाने कैसा है!"

हँसकर सुचरिता ने कहा, "हाँ, ज़रूर न जाने कैसा है!" कहते-कहते गोरा की वही चौड़े माथे वाली तिलकधारी छवि का स्मरण करके उसे फिर गुस्सा आ गया। गुस्सा इसलिए कि उस तिलक के द्वारा ही गोरा ने मानो अपने माथे पर बड़े-बड़े अक्षरों में यह लिख रहा है कि मैं तुमसे अलग हूँ। इस अलगाव के प्रचंड अभिमान को धूल धूसरित करके ही सुचरिता के जी की जलन मिट सकेगी।

धीरे-धीरे बातचीत बंद हो गई और दोनों सो गईं। रात के दो बजे सुचरिता ने जागकर देखा, बाहर झमाझम बारिश हो रही है और बार-बार बिजली की चमक उनकी मसहरी को भेदकर भीतर कौंध जाती है कमरे के कोने में जो दिया रखा था वह बुझ गया है। रात की निस्तब्धता और अंधकार में अविराम वर्षा के शब्द के साथ सुचरिता के मन में फिर वही वेदना जाग उठी। करवट अदल-बदलकर उसने सोने की बड़ी कोशिश की; पास ही गहरी नींद में डूबी हुई ललिता को देखकर उसे ईष्या भी हुई, किंतु किसी तरह नींद में डूबी ऊबकर बिस्तर छोड़कर वह बाहर निकल आई। खुले दरवाजे क़े पास खड़ी-खड़ी बौछार आने लगीं। "आप जिन्हें अशिक्षित कहते हैं मैं उन्हीं के गुट का हूँ-आप जिसे कुसंस्कार कहते हैं वही मेरा संस्कार है। आप जब तक देश को प्रेम नहीं करते और देश के लोगों के साथ मिलकर खड़े नहीं होते तब तक आपके मुँह से देश की बुराई का एक शब्द भी सुनने को तैयार नहीं हूँ।" इस बात के जवाब में पानू ने कहा था, "ऐसा करने से देश का सुधार कैसे होगा?' गरजकर गोरा ने कहा था, "सुधार? सुधार तो बहुत बाद की बात है। सुधार से कहीं बड़ी बात है प्रेम की, श्रध्दा की; पहले हम एक हों, फिर सुधार भीतर से ही अपने-आप हो जायेगा।

अलग होकर आप लोग तो देश के टुकड़े-टुकड़े करना चाहते हैं- आप लोग जो कहते हैं कि देश में कुसंस्कार है इसलिए आप सुसंस्कारी लोग उससे अलग रहेंगे। किंतु मैं यह कहता हूँ कि किसी से श्रेष्ठ होकर किसी से अलग नहीं होऊँगा। यही मेरी बड़ी आकांक्षा है। फिर एक हो जाने पर कौन-सा संस्कार रहेगा, कौन-सा नहीं रहेगा, यह हमारा देश जाने- या जो देश के विधाता हैं वे जानें।" पानू बाबू ने कहा था, "ऐसे अनेक रीति-रिवाज़ और संस्कार हैं जो देश को एक नहीं होने देते।" तब गोरा ने कहा था, "आप अगर यही सझते हैं कि पहले उन सब रीति-रिवाज़ों और संस्कारों को उखाड़ फेंके, और उसके बाद देश एक होगा, यह तो समुद्र पार करने की चेष्टा करने से पहले समुद्र को सुखा देने जैसा होगा। अहंकार और अवज्ञा छोड़कर, नम्र होकर, प्रेम से पहले स्वयं को सच्चे दिल से सबके साथ मिलाइए; उस प्रेम के आगे हज़ारों त्रुटियाँ और कमज़ोरियाँ सहज ही नष्ट हो जाएँगी। सभी देशों के अपने-अपने समाजों में दोष और अपूर्णता है, किंतु देश के लोग जब तक जाति-प्रेम के बंधन से एकता में बँधे रहते हैं तब तक उसका विष खत्म कर आगे बढ़ सकते हैं। सड़ाँध का कारण हवा में ही होता है; किंतु जीते रहें तो उससे बचे रहते हैं, मर जाएँ तो सड़ने लते हैं। मैं आपसे कहता हूँ, ऐसा सुधार करने आएँगे तो हम नहीं सह सकेंगे, फिर चाहे आप लोग हों, चाहे मिशनरी हों।" पानू बाबू बोले थे, "क्यों नहीं सह सकेंगे?" गोरा ने कहा था, "नहीं सह सकेंगे, उसका कारण है। माँ-बाप की ओर से सुधार सहा जाता है, लेकिन पहरेदार की ओर से सुधार में, सुधार से कहीं अधिक अपमान होता है, इसलिए वैसा सुधार मानने में मनुष्यत्व खत्म होता है पहले अपने बनिए, फिर सुधारक बनिएगा.... नहीं तो आपकी शुभ बातों से भी हमारा अनिष्ट ही होगा।" यों एक-एक करके सारी बातचीत सुचरिता के मन में तैर गई और एक अनिर्देश्य व्यथा की कसक टीस गई। थककर सुचरिता फिर बिस्तर पर आ लेटी और हथेली से ऑखें ढँककर

सोचना बंद करके सोने की कोशिश करने लगी। किंतु उसके शरीर और कानों में एक झनझनाहट हो रही थी, और इसी बातचीत के टुकड़े बार-बार उसके मन में गूँज उठते हैं

गोरा - Gora in Hindi

1. गोरा अध्याय
2. गोरा अध्याय
3. गोरा अध्याय
4. गोरा अध्याय
5. गोरा अध्याय
6. गोरा अध्याय
7. गोरा अध्याय
8. गोरा अध्याय
9. गोरा अध्याय
10. गोरा अध्याय
11. गोरा अध्याय
12. गोरा अध्याय
13. गोरा अध्याय
14. गोरा अध्याय
15. गोरा अध्याय
16. गोरा अध्याय
17. गोरा अध्याय
18. गोरा अध्याय
19. गोरा अध्याय
20. गोरा अध्याय